

एकात्म मानववाद : एक सार्वभौमिक व्यावहारिक दर्शन

डॉ० सुशील कुमार त्रिपाठी

दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रस्तावना

एकात्म मानववाद मानव दर्शन तथा संपूर्ण प्रकृति के एकात्म संबंधों का दर्शन है एवं एक सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था का परिचारक है। यह कोई वाद या सिद्धांत नहीं है। इस दर्शन की परिधि में एक ओर व्यक्ति के जीवन का उसके सर्वांग के साथ संकलित चिंतन मनन है तो दूसरी ओर चराचर सृष्टि का भी उसके सभी अंगों को ध्यान में रखते हुए किया गया संकलित विचार है। जिसका उद्देश्य एक विश्व राज्य की स्थापना करना है। इस प्रयास की प्रथम कड़ी व्यक्ति है। व्यक्ति को संगठित कर ही हम परिवार, समुदाय, राष्ट्र, मानवता और चराचर विश्व को संगठित करने की कामना कर सकते हैं। अतः मानव के समन्वित एवं समग्र विचार के आधार पर विश्व मानवता की स्थापना ही एकात्म मानववाद का लक्ष्य है। (1)

एकात्म मानववाद की पृष्ठभूमि के दो आयाम हैं। प्रथम— पाश्चात्य जीवन दर्शन तथा द्वितीय भारतीय संस्कृति। मानववाद मुख्यतः पाश्चात्य जगत की अवधारणा है तथा एकात्मवाद का भाव भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है। भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है। इसमें संपूर्ण जीवन एवं संपूर्ण सृष्टि का संकलित विचार किया जाता है जबकि पश्चिमी संस्कृति और चिंतन में जीवन के संबंध में टुकड़ों-टुकड़ों में विचार किया जाता है और फिर उसे जोड़ने का उपक्रम किया जाता है। व्यक्ति और समाज रचना की दृष्टि में भी दोनों में पर्याप्त अंतर परिलक्षित होता है। जहाँ भारतीय चिंतन मनुष्य को केवल व्यक्ति न मानकर शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय मानती है और इसी आधार पर उसके व्यक्तित्व में 'मैं' के स्थान पर 'हम' के सामूहिक भाव का दर्शन करती है जिससे वह अपने आपको समाज के एक अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार करता है।

वहीं पश्चिम में मनुष्य और समाज के बारे में एकाकी चिंतन दृष्टि दिखाई देती है। पश्चिमी चिंतन जिसके आधार पर वहाँ राजनीतिक व सामाजिक जीवन की सृष्टि हुई है, यह मानकर चलता है कि समाज व्यक्तियों का ऐसा समूह है जिसे व्यक्तियों ने आपस में समझौते के द्वारा बनाया है। पश्चिमी जगत में लौकिक जीवन का वैशिष्ट्य है, इसलिए वहाँ व्यक्ति महत्वपूर्ण हैं। अतः कहा तक जा सकता है कि पाश्चात्य मानववाद के भारतीय जीवन दर्शन के साथ एकीकरण अथवा उसके भारतीयकरण का प्रतिफल है। (2)

एकात्म मानववादी दर्शन

एकात्म मानववाद का एक वैचारिक एवं सार्वभौमिक व्यावहारिक दर्शन वैश्विक मानव जगत को पं. दीनदयाल उपाध्याय की अनुपम देन है। पं. दीनदयाल उपाध्याय का

मानना है कि उन्होंने मानववाद के रूप में किसी नये दर्शन का प्रतिपादन नहीं किया अपितु उन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति की नवीन वैश्विक विचार प्रवाह के संदर्भ में एक युगानुकूल व्याख्या की हैं। पं. दीनदयाल उपाध्याय एक युग द्रष्टा थे। उन्होंने एकात्मवाद की अवधारणा का सर्वप्रथम प्रतिपादन 1964 –1965 में भारतीय जनसंघ के अधिवेशन में किया। यह वह काल खंड था जब पूंजीवादी उदारवादी विचारधारा और मार्क्सवादी विचारधारा परस्पर विरोधी चिंतन से मानवता को विनष्ट करने पर तुली हुई थी और मानव जाति किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति में था। उदारवाद ने व्यक्ति को स्वतंत्रता तो प्रदान की किंतु उसका विकास पूंजीवादी व्यवस्था के साथ शोषण और केन्द्रीकरण के साधन के रूप में हुआ। शोषण समाप्त करने के लिए समाजवाद आया परंतु इसने व्यक्ति की स्वतंत्रता और गरिमा को ही नष्ट कर दिया। सत्त्व हरण करने वाले का सत्त्व हरण लगातार जारी है। ऐसी अवस्था में जबकि पाश्चामत्य उदारवादी, पूंजीवादी व्यवस्था तथा साम्यवादी व्यवस्था समाज को स्थायी, सामन्जस्यपूर्ण तथा राष्ट्र की प्रकृति के अनुकूल व्यवस्थाव नहीं दे सकी। हमें एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता थी जो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और वैश्विक जगत में पूर्ण समन्वय स्थापित कर सके एवं प्रत्येक व्यक्ति को सुसंगठित मानव बनाकर विश्व मानवता के साथ उसका एकात्म संबंध स्थापित करें। प्रत्येक राष्ट्र को अपनी-अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुकूल विकास करने के लिए प्रोत्साहित करें और साथ ही उनमें परस्पर एकात्मकता का भाव भी उत्पन्न कर सके। ऐसी स्थिति में पं. दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय संस्कृति के मूल में स्थित एकात्म भाव का प्रतिपादन एकात्म मानववाद के रूप में किया। पं. दीनदयाल उपाध्याय चाहते थे कि सदियों के आक्रमण, गुलामी एवं यातना से उबरे स्वातन्त्र भारत को एक ऐसी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था मिले जो व्यक्ति को सामर्थ्यवान बनाकर व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के साथ-साथ पूरे चराचर जगत में समन्वय स्थापित करे। प्रत्येक राष्ट्र अपनी-अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार विकास करते हुए विश्व मानवता के साथ एकात्म हो सके।

पं. दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि व्यक्ति को चरित्रवान बनाकर उसे सुसंगठित कर एवं उसमें राष्ट्रीयता की भावना जगाकर ही एक चरित्रवान सुसंगठित, सुसंस्कृत तथा राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत समाज का निर्माण किया जा सकता है जिसके बल पर सनातन सत्य के ज्ञान की प्राप्ति संभव है। एकात्म मानववाद इसी प्रकार की सामाजिक व्यवस्था का द्योतक है। यह न केवल भारतीय संस्कृति का युगानुकूल विवेचन है बल्कि वैश्विक विचारों के लिए पूरक भारतीय चिंतन भी है। (3)

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने बंबई के अपने प्रसिद्ध भाषण के अंत में कहा था कि “हमने मानव के समग्र एवं संकलित रूप का थोड़ा विचार किया। इस आधार पर हम भारतीय संस्कृति के शाश्वत मूल्यों के साथ राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र, समता और विश्व एकता के आदर्शों को समन्वित रूप में रख सकेंगे। जिससे मानव-मानव में मध्य विरोध नष्ट होगा और वे परस्पर पूरक हो सकेंगे। मानव अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा और जीवनोद्देश्य को प्राप्त कर सकेगा।”

पं. दीनदयाल का चिंतन समग्रतावादी है। वह व्यक्ति और समाज का खण्डित विचार नहीं करते। उनके चिंतन के मूल में भारतीय सांस्कृतिक विशिष्टता है जो संपूर्ण जीवन का, संपूर्ण सृष्टि का समन्वित रूप में समग्रता से विचार करती है। उसका दृष्टिकोण एकात्म वादी है। पश्चिम की समस्या का मुख्यतः कारण उसके जीवन के संबंध में टुकड़ों टुकड़ों में विचार करना और तत्पश्चात् उसे जोड़ने का प्रयास करना है। जबकि भारतीय चिंतन एवं जीवन-दृष्टि संपूर्ण जीवन में एकता के दर्शन का प्रतिपादन करती है। जीवन में विविधता, जीवन में अंतर्भूत एकता का आविष्कार है और इसलिए उनमें परस्पररानुकूलता तथा पूरकता है। वैसे तो यहाँ यह स्वीकार किया जाता है कि जीवन में अनेकता तथा विविधता है, लेकिन इस अनेकता एवं विविधता के मूल में निहित एकता की खोज हम सदा करते रहे हैं और हमने संपूर्ण जीवन में स्थित मूलभूत एकता का दर्शन किया है। विविधता में एकता और एकता का विविध रूपों में व्यक्तिकरण ही भारतीय संस्कृति का केंद्रीय विचार है। यदि हम इस तथ्य को स्वीकार कर लें तो विभिन्न सत्ताओं के मध्य संघर्ष नहीं रहेगा। सृष्टि में जहाँ संघर्ष दिखता है वहीं सहयोग भी नजर आता है। वनस्पति और प्राणी एक दूसरे की आवश्यकता को पूरित करते हुए जीवित हैं। हमें आक्सीजन वनस्पतियों से मिलती है और वनस्पतियों के लिए आवश्यक कार्बन डाई आक्साइड वे प्राणियों से प्राप्त करते हैं। इस परस्पर पूरकता के कारण ही संसार चलायमान है। संसार में एकता का दर्शन कर उसके विविध रूपों के बीच परस्पर पूरकता की पहचान कर, उसमें परस्पररानुकूलता का विकास करना तथा उसका संस्कार करना ही संस्कृति है। (4)

व्यष्टि और समष्टि के अंग एवं सुख

भारतीय धर्म दर्शन में सृष्टि एवं संपूर्ण समाज के साथ-साथ व्यक्ति का भी एकात्म एवं संकलित चिंतन किया गया है। सामान्यतया व्यक्ति का विचार करते समय शरीर का ध्यान आता है और हम शरीर को प्राप्त सुख को ही सुख समझ बैठते हैं, किंतु हमें पता है कि यदि मन दुःखी हो तो शारीरिक सुख का कोई मायने नहीं। इसलिए शरीर के साथ मन के सुख का विचार भी करना पड़ता है, किंतु यदि शरीर और मन दोनों सुख प्राप्त हेतु उद्यत है किंतु बुद्धि विचलित है, या हम मानसिक पीड़ा से ग्रस्त हैं, तो शरीर और मन का सुख व्यर्थ ही रहेगा। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को सुखी रखने के लिए शरीर और मन के साथ-साथ बुद्धि को भी सुख प्रदान करना होगा। एकात्म मानववाद के अनुसार व्यक्ति केवल शरीर नहीं है, बल्कि भारतीय विचारकों के तारतम्य में व्यक्ति शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है। हम उसे टुकड़ों में बाटकर विचार नहीं कर सकते। आज विश्व में जो समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं उसका कारण है कि पश्चिमी जगत ने मनुष्य के एक-एक हिस्से पर पृथक-पृथक विचार किया। किसी ने कहा कि व्यक्ति का मात्र एक धार्मिक अस्तित्व है और यह धार्मिक विचारों से अनुप्राणित होता है। इससे धार्मिक अंधविश्वासों का, मतांधता एवं कठमुल्लापन का एक विशेष दुराग्रह निर्मित हुआ और इसने विश्व का व्यापक विनाश किया। कुछ ने कहा कि मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी है, और इसलिए इसकी कुछ विशिष्ट राजनीतिक आकांक्षाएँ हैं। उसकी पूर्ति के लिए ही विभिन्न समाजों का उदय होता है। कहीं-कहीं व्यक्ति को आर्थिक प्राणी माना गया है। तत्पश्चात् व्यक्ति और समाज के

परस्पर संबंध उत्पादन प्रणाली के आधार पर समझने का प्रयत्न किया गया। इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार से व्यक्ति को परिभाषित करने के प्रयत्न किए गए हैं, और उसकी किसी एकांगी प्रवृत्ति को ही समग्र व्यक्तित्व मानकर अनेक राजनीतिक आर्थिक दर्शन प्रस्तुत किए गए हैं। वे सभी एकांगी होने के कारण अधूरे हैं।

पं. दीनदयाल उपाध्याय ने वैज्ञानिक एवं दार्शनिक आधार पर एकात्म मानववाद के रूप में एक विकल्प हमारे सामने प्रस्तुत किया। उनके अनुसार जैसे व्यक्ति केवल शरीर नहीं है अपितु शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है। व्यक्ति केवल मैं तक सीमित नहीं है। समाज व समष्टि तक उसकी भूमिका होती है। समष्टि भी व्यक्तियों से मिलकर बनती है, इसलिए समष्टि के लिए देश, जन, संस्कृति और चित्ति की आवश्यकता होती है। जैसे व्यक्ति की एक आत्मा होती है, वैसे ही समाज की भी एक आत्मा होती है जिसे हम चित्ति के नाम से जानते हैं। इस चित्ति का प्रकटीकरण, इसका सम्यक रूप से अनुभव ही किसी समाज को स्वस्थ एवं गतिमान बनाता है। यह चित्ति ही उसका विराट रूप प्रदर्शित करती है और समाज को समाज के रूप में अपनी स्थिति बनाए रखने में समर्थ करती है। पं. दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि इस चित्ति रूपी सामाजिक चेतना को, इस चैतन्य को यदि समाज में नहीं बनाए रखा जाता तो समाज अपनी सारी मूल प्रकृति को खो बैठता है। व्यक्ति आत्मा और समाज की सामूहिक चेतना के साथ साक्षात्कार ही सच्चा जीवन दर्शन प्रदान करेगा।

पं. दीनदयाल उपाध्याय का मानना है कि जिस प्रकार व्यक्ति के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मान के रूप में चार अंग हैं। उसे इनसे चार प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है उसी प्रकार समष्टि जगत के भी चार अंग होते हैं। और उनसे चार प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है।

व्यक्ति के चार अंग और चार सुख

शरीर मनुष्य का एक अंग है। मानव शरीर में स्थिति कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्ते सुख ही शारीरिक सुख है। मन मनुष्य का दुसरा अंग है, मन का सुख शारीरिक सुख से उत्तम कोटि का सुख है। अच्छे कार्यों से प्राप्त प्रशंसा एवं पुरस्कार, गीत, संगीत, चिडियों की चहचहाहट, प्रकृति एवं फूलों की सुगंध एवं सुंदरता, स्वजनों का शुभ संदेश, कार्य से प्राप्त सुख मन का सुख इत्यादि है। एकात्मक मानवदर्शन साम्यवादियों की भाँति मानव जीवन के लिए रोटी को आवश्यक मानता है, किंतु वह रोटी परिश्रम द्वारा कमाई हुई एवं सम्मानित होनी चाहिए।

बुद्धि का सुख मन के सुख से भी उच्च कोटि का सुख होता है। इसके अंतर्गत, श्रेष्ठ धार्मिक ग्रंथों एवं उपयोगी पुस्तकों का अध्ययन, अनसुलझें प्रश्नों को सुलझाना, वैज्ञानिक खोज एवं प्रगति, विश्व का अस्तित्व, आत्मा की अमरता, ईश्वर का अस्तित्व एवं उसकी सत्ता आदि से संबंधित प्रश्नों के समाधान से प्राप्त, सुख बुद्धि का सुख है। आत्मा द्वारा प्राप्त सुख सर्वोत्तम सुख है। भारतीय दर्शन एवं अनेक विचारकों ने इसे एक चेतन सत्ता के रूप में स्वीकार किया है, जो शरीर को गतिमान रखती है

और अमर है। यह आत्मा और परमात्मा, परमब्रह्म के मध्य तादात्म्य का, साक्षात्कार का सुख है। यहाँ मनुष्य को यह ज्ञान प्राप्त होता है, कि मैं शरीर, मन, बुद्धि से ऊपर एक चेतन सत्ता हूँ, मैं परम-आत्मा का ही एक अंश हूँ, यहाँ मनुष्य को आत्म-ज्ञान की प्राप्ति होता है उसे 'अहं ब्रह्मास्मि' के ज्ञान का भान हो जाता है जो अद्वैत दर्शन का मूल मंत्र है। यहाँ पर संसार के सभी मानव एक ही आत्मा-परमात्मा के सूत्र में बंध जाते हैं। अनेकता मिट जाती है और एकात्मकता कायम हो जाती है। मानवता की आत्मा, विश्व मानवता की आत्मा में विलीन हो जाती है और चराचर विश्व को एकात्म दर्शन हो जाता है। (2)

मानवीय सुखों के उपर्युक्त अंतरों को देखकर यह नहीं समझना चाहिए कि शारीरिक सुख निम्न कोटि का सुख है। दीनदयाल जी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि मानव के उत्थान का क्रम नीचे से ऊपर अर्थात् स्थूल से सूक्ष्म की ओर होता है। इस क्रम में शरीर का सुख, सुख प्राप्ति की पहली कड़ी है। मनुष्य प्रारंभ में भौतिक सुखों की ओर जाता है और फिर मन एवं बुद्धि के सुख प्राप्ति की तरफ अग्रसर होता है। उक्त तीनों सुखों की प्राप्ति और उपभोग के बाद वह आत्म-साक्षात्कार अर्थात् आत्म-सुख एवं आत्म-ज्ञान की प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। आत्म सज्ञान प्राप्त करते ही मानव परम-आत्मा की प्राप्ति कर लेता है। यहाँ उसे परमानंद की अनुभूति होती है। अब वह उस अवस्था में पहुँच जाता है, जहाँ से उसे पूरे विश्व में एकात्म भाव का दर्शन होता है। मानवता की आत्मा विश्व मानवता में विलीन हो जाती है। अनेकता विभिन्नता मिट जाती है, और चराचर जगत का एकात्म दर्शन प्राप्त होता है।

समष्टि के चार अंग और चार सुख

व्यक्ति की ही भाँति समष्टि के भी चार तत्व होते हैं जिनसे उनकी रचना होती है। समष्टि की भी व्यष्टि की ही भाँति शरीर, मन, बुद्धि, एवं आत्मा होती है, जिनका सुख उसे प्राप्ता होता है। यथा-समष्टि का शरीर होता है देश, राष्ट्र की भूमि तथा उस पर निवास करने वाला जनसमूह। समष्टि की भूमि और उसपर अस्तित्ववान प्राणियों की उपस्थिति उनका समष्टि भाव में शारीरिक सुख ही समष्टि का शारीरिक सुख है। सामूहिक संकल्प या जन समूह की इच्छा ही समष्टि का मन होता है। इनसे प्राप्त सुख ही समष्टि के मन का सुख होता है। किसी भी राष्ट्र को सचारु रूप से संचालित करने हेतु बनाया गया नियम या संविधान ही समष्टि की बुद्धि होती है और इसका सही रूप में पालन ही राष्ट्र धर्म होता है। राष्ट्र-धर्म द्वारा प्राप्त सुख ही समष्टि का सुख होता है। एक राष्ट्र अपने उन्नत चरित्र एवं नैतिक बल के आधार पर ही विश्व-राष्ट्र के निर्माण की कल्पना कर सकता है। व्यक्ति की आत्मा की भाँति राष्ट्र की भी एक आत्मा होती है जिसे पं. दीनदयाल उपाध्याय ने चिति कहा है। प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक प्रकृति होती है जो ऐतिहासिक या भौगोलिक कारणों का परिणाम नहीं होती अपितु जन्मजात होती है और यही चिति है। यही राष्ट्र की आत्मा है और यही आत्मा राष्ट्र के प्रत्येक श्रेष्ठ व्यक्ति के आचरण द्वारा प्रकट होती है। राष्ट्रों के उदय या पतन चिति के अनुकूल अथवा प्रतिकूल व्यवहार पर ही निर्भर करता है। (4)

चिति एवं विराट

पं. दीनदयाल उपाध्याय का मानना है कि समष्टि के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिए राष्ट्र के उस मूल तत्व की पहचान करनी होगी जिसके आविर्भाव से राष्ट्र का उदय होता है, जिसके कारण राष्ट्र की धारणा होती है, और जिसके क्षीण होने पर राष्ट्र विनाश की ओर अग्रसर हो जाता है। यह मूल तत्व है राष्ट्र की प्रकृति जिसे शास्त्रीय ढंग से चिति कहा गया है। चिति किसी राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति में मातृभूमि के प्रति प्रेम एवं उससे उत्पन्न सुख की भावना के रूप में रहती है। वह सर्वोत्कृष्ट सुख जिसके समक्ष अन्य सभी बातों का कोई महत्व न हो, इस चिति द्वारा स्थापित होती है। जब तक चिति जागृत और निरामय रहती है राष्ट्र का अभ्युदय होता रहता है। इसी चिति रूपी चेतना के आधार पर राष्ट्र संगठित होता है तथा अपने लक्ष्य की पूर्ति हेतु सतत् प्रयत्नशील रहता है। जैसे राष्ट्र का आधार चिति होती है, वैसे ही जिस शक्ति से राष्ट्र की धारणा होती है, उसे विराट कहते हैं। विराट राष्ट्र की वह कर्म शक्ति है जो चिति से जागृत एवं संगठित होती है। विराट का राष्ट्र जीवन, जीवन में वही स्थान है जो शरीर में प्राण का है। जागृत विराट की अवस्था में राष्ट्र की विविधता उसके एकता के लिए बाधक नहीं बनती। अतः पं. दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्र की जागरूक शक्ति को विराट कहते हुए उसे जागृत बनाए रखने पर बल देते हैं। (2)

पं. दीनदयाल उपाध्याय का कहना है कि “भारतीय व्यक्ति और समाज रचना का उदाहरण विश्व में अद्वितीय है। भारतीय चिंतन में व्यक्ति और समाज के संबंधों को परस्पर संघर्ष के आधार पर नहीं देखा जाता, इनमें अभिन्नता आँकी जाती हैं। समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपना योगदान दे सके, ओर साथ ही स्वयं का विकास कर समाज सेवा के लिए तत्पर हो सके। इस दृष्टि से भारत में वर्ण व्यवस्था की स्थापना हुई। यह व्यवस्था इसी आधार पर विकसित हुई कि जन सामान्य अपने गुण ओर कर्म के आधार पर समाज में अपना योगदान दे सके। व्यक्ति के अंदर जो श्रेष्ठताएं हैं, उनका विकास हो और व्यक्ति अपना जीवन ध्येय प्राप्त कर सके।”

व्यष्टि तथा समष्टि के पुरुषार्थ

व्याष्टि तथा समष्टि को शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मास का समुच्चय स्वीकार करने के साथ ही उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एवं उसके सर्वांगीण विकास हेतु कर्तव्य के रूप में हमारे यहाँ चार पुरुषार्थ की कामना की गई है। जैसे मनुष्य के विकास के लिए पुरुषार्थ आवश्यक है वैसे ही समष्टि के लिए भी पुरुषार्थ आवश्यक हैं। पुरुषार्थ का अर्थ उन कर्मों से है जिससे पुरुषत्व सार्थक हो। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामना ‘मनुष्य’ में स्वाभाविक रूप में होती है और इसके अनुपालन से उसे आनन्द की प्राप्ति होती है। इन पुरुषार्थों का हमारे यहाँ संकलित विचार किया गया है। मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित किया गया है, लेकिन अन्य पुरुषार्थों की अवहेलना से मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं हो सकती।

शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति से लेकर सारी कामनाएँ काम पुरुषार्थ के अंतर्गत आती हैं। यह पुरुषार्थ व्यक्ति को कर्म करने हेतु प्रेरित करता है। काम पुरुषार्थ हेतु साधनों की व्यवस्था करना अर्थ पुरुषार्थ का कार्य है। अर्थ की प्राप्ति ईमानदारी और परिश्रम से किया जाना चाहिए एवं अर्थ के अभाव और प्रभाव का ख्याल रखना चाहिए। धर्म आधारभूत पुरुषार्थ है। काम और अर्थ की साधना धर्म के अनुसार करने पर उसकी प्राप्ति सुखदायक होती है। धर्म पुरुषार्थ व्यक्ति के विकास में सहायक होकर अंतिम पुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्तर करता है। (1)

चार पुरुषार्थों में धर्म यदि आधारभूत पुरुषार्थ है, तो मोक्ष परम पुरुषार्थ है। यह मनुष्य का श्रेष्ठतम लक्ष्य है। इसकी प्राप्ति से मनुष्य को अखंड सुख की अनुभूति होती है। भारतीय दर्शन में इसकी प्राप्ति के लिए तीन मार्ग बताए गए हैं— कर्म मार्ग, ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग। मनुष्यी के कर्म का संबंध शरीर से, ज्ञान का संबंध बुद्धि से तथा भक्ति का संबंध मन से होता है। भक्ति समन्वित ज्ञान युक्त निष्काम कर्म से ही मोक्ष की प्राप्ति संभव होती है। मोक्ष प्राप्ति के क्रम में व्यक्ति को सर्वप्रथम यह ज्ञान होता है कि मैं ब्रह्म का ही एक अंश हूँ और फिर 'अहं बह्मास्मि' का भी भान होता है और व्यक्ति एवं परमब्रह्म में तादात्म्य स्थापित हो जाता है, इनमें परम एकात्मिता कायम हो जाती है।

व्यष्टि (व्यक्ति) की ही तरह समष्टि के भी चार पुरुषार्थ होते हैं। किसी भी समाज या राष्ट्र की स्वतंत्रता, स्वावलंबन, विकास, संगठन इत्यादि का स्वरूप उसके काम पुरुषार्थ द्वारा निर्धारित होता है। आपात स्थिति में राष्ट्र के रक्षार्थ नागरिकों का सहयोग, राष्ट्र की अखंडता और संप्रभुता का संकल्प आदि कार्य राष्ट्र के काम पुरुषार्थ के अंतर्गत आते हैं। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने समष्टि के काम पुरुषार्थ को दो भागों में बाँटा है। धर्मविहीन काम पुरुषार्थ तथा धर्माधिष्ठित काम पुरुषार्थ। राष्ट्रीय संकट के समय देश से गद्दारी करना, किसी देश की मदद नकारात्मक दृष्टि से करना, धर्म परिवर्तन करवाना, आंतकवाद को बढ़ावा, किसी राष्ट्र की संप्रभुता का हरण करना इत्यादि समष्टि के धर्म विहीन काम पुरुषार्थ के अंतर्गत आते हैं। अतः इससे बचना चाहिए। (2)

व्यष्टि और समष्टि दोनों के अर्थ की आवश्यकता होती है बिना अर्थ के समाज, राष्ट्र और विश्व का विकास असंभव है अर्थ पुरुषार्थ को भी अधार्मिक और धार्मिक दो भागों में बाँटा जाता है। किसी राष्ट्र द्वारा विदेशी मुद्रा प्राप्त करने के लिए नकारात्मक एवं अनैतिक कार्यों को करना या प्रोत्साहित देना अधार्मिक अर्थ पुरुषार्थ माने जाते हैं और ईमानदारी पूर्वक परिश्रम से किया गया धनोपार्जन समष्टि का धार्मिक अर्थ पुरुषार्थ कहलाता है। अधार्मिक अर्थ पुरुषार्थ का त्याग और धार्मिक अर्थ पुरुषार्थ का पालन ही राष्ट्र को महान बना सकता है। समष्टि में विभिन्नता में एकता कायम कर जीवन को सुचारु रूप से चलाने वाले नियम या आचार संहिता ही समष्टि का धर्म पुरुषार्थ है।

राष्ट्र में विभिन्न प्रकार की प्रकृति और प्रवृत्तियाँ होती हैं। विभिन्न प्रकार के व्यवसाय और रोजगार होते हैं जिसे अलग-अलग लोग करते हैं लेकिन प्रत्येक कार्यों में देश

के सभी नागरिकों का योगदान और सहयोग करना ही राष्ट्र-धर्म है। ईमानदारी पूर्वक अपना निर्धारित कार्य करना एवं मातृभूमि की सेवा व विकास तथा सुरक्षा का संकल्प लेना राष्ट्रीय धर्म है। धर्म पुरुषार्थ को हम राष्ट्रीय जीवन में अखण्ड भारत, हिंदू राष्ट्र आदि से विभूषित कर सकते हैं। प्रत्येक राष्ट्र के द्वारा अपने राष्ट्र-धर्म का यथार्थ में पालन ही समष्टि का धर्म है। (3)

व्यक्ति के मोक्ष की ही भाँति समष्टि का भी मोक्ष होता है। जिस प्रकार व्यक्ति आत्म साक्षात्कार के द्वारा परम-आत्मा की प्राप्ति का प्रयास करता है। ठीक उसी प्रकार एक राष्ट्र की चित्ति ही उसका मोक्ष होता है जिसकी अभिव्यक्ति या साक्षात्कार करने का प्रयास एक राष्ट्र करता है। पं. दीनदयाल उपाध्याय ने कहा है कि "प्रत्येक राष्ट्र उस परम सत्ता द्वारा नियत किए गए जीवन कार्य को ही लेकर जन्म लेता है और इस कार्य की पूर्ति के लिए अपनी पूरी शक्ति लगाकर प्रयत्न करना ही उस राष्ट्र के विकास की सर्वोत्तम एवं एकमेव साधना है।" यदि भारत के संदर्भ में कहा जाय तो चारों पुरुषार्थों से युक्ति सुसंगठित, सुव्यवस्थित, सुसंस्कृत, समृद्ध, प्रबल तथा एकात्म-हिंदू राष्ट्र की कल्पना को साकार करते हुए विश्व गुरु के पद पर प्रतिष्ठित होकर समस्त विश्व एवं वैश्विक मानवता को विश्व शांति एवं जीवन की एक नयी दृष्टि एक नया मार्ग दिखाना ही समष्टि का मोक्ष है। (4)

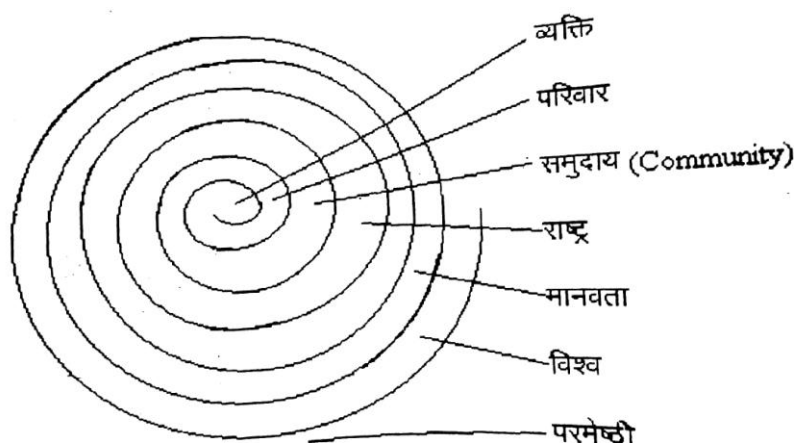
समष्टि के मूल तत्व : परिवार और समाज

एकात्म मानववाद के अनुसार व्यक्ति निर्माण से लेकर विश्व निर्माण की प्रक्रिया में परिवार और समाज की महत्व पूर्ण भूमिका होती है। व्यक्ति और परिवार में अन्योन्यश्रित संबंध होता है। परिवार की मूल इकाई व्याक्ति ही होता है। जन्म से लेकर लालन-पालन, भरण-पोषण, शिक्षा, विवाह इत्यादि सभी कार्यों को परिवार ही संपादित करता है। एक परिवार के सभी सदस्य एक समान होते हैं। परिवार में सबका स्तर एक होता है एवं सभी सदस्य अपना सुख एवं दुःख आपस में बाट लेते हैं। परिवार में बेरोजगार, अपंग, रोग-ग्रस्त, वृद्ध आदि सभी व्यक्तियों की देख-भाल उचित ढंग से हो जाती है। पाश्चात्य और कम्युनिस्ट देशों में परिवार की व्यवस्था पर आघात हुआ है। जिसका असर भारत जैसे देशों पर पड़ता हुआ परिलक्षित हो रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप संयुक्त परिवार बिखर रहे हैं, और उनकी जगह एकल परिवार ले रहा है, जिसमें पति-पत्नी के अलावा अविवाहित पुत्र एवं पुत्री और आश्रित माता-पिता तक सीमित हो गई है। कहीं कहीं परिवार में बेरोजगार, अपंग, वृद्ध आदि व्यक्तियों के लिए कोई जगह नहीं रह गई है और यह परिवार के प्रति पश्चिमी चिंतन दृष्टि का प्रतिफल है। (5)

समाज व्यक्तियों का समूह है, यह व्यक्तियों से मिलकर बना है। यह एक सामान्यक अवधारणा है। समाज के बारे में भारतीय एकात्म दर्शन की धारणा पाश्चात्य धारणा से भिन्न है। भारतीय चिंतन दृष्टि समाज को स्वयंभू मानती है। इसका मानना है कि जिस प्रकार व्यक्ति पैदा होता है उसी प्रकार समाज भी पैदा होता है। समाज प्राकृतिक है व्यक्ति द्वारा निर्मित नहीं। समाज स्थापित करने का न तो कोई निवेदन पत्र है, और न ही किसी सभा के निर्णय के उपरांत पंजीकरण की व्यवस्था से निर्मित

है। समाज एक सहज केंद्रीय जैविक सृष्टि है। समाज कृत्रिम मानवीय उपायों से न तो बनता और न ही नष्ट होता है। वास्तव में समाज एक ऐसी सत्ता है जिसकी अपनी आत्मा है, जिसका अपना एक जीवन है। समाज का भी व्यक्ति की ही भाँति शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा होती है। व्यक्ति और समाज का अवयव-अवयवी स्वरूप का संबंध है। जैसे जन्म लेने वाले जीव का अपने माता-पिता का चयन करने की स्वतंत्रता नहीं है। जन्म के बाद व्यक्ति का नामकरण होता है। नामकरण व्यक्ति के समाज से जुड़ा विषय है तथा उसी नाम से व्यक्ति का समाज से नाता हो जाता है। यह परिपाटी व्यक्ति के अंदर का सुप्त गुण है जिसका प्रकटीकरण एवं विकास समाज के साथ होता है। हर पीढ़ी का जुड़ा आदर्श, संस्कार, परंपरायें हमारी धरोहर हैं तथा इन्हीं के आधार पर जीवित समाज एकात्म रहकर प्रगति कर रहा है। यही कारण है कि हम व्यक्ति के हित-अहित का विचार करते समय समाज के हित-अहित का विचार करते हैं। इस आधार पर न तो स्वतंत्रता का अपहरण होता है और न ही समाजवाद का निर्जीव यंत्र बनकर व्यक्ति मूल्यहीन बनता है। इस प्रकार भारतीय चिंतन व्यक्ति के अस्तित्व पर समाज के मूल्य भाव का प्रातिपादन करता है।(6)

चित्र 1: समष्टि जीवन चक्र, भारतीय चिंतन दृष्टि अवतरण से शीर्ष की ओर परस्पर आबद्ध आरेख अखंड मंडलाकार रचना

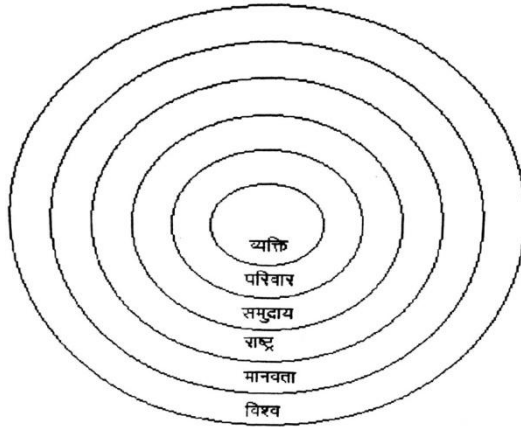


आरेख चित्र 1 में प्रदर्शित भारत का समष्टि जीवन चक्र आंतरिक कड़ी से परस्पर जुड़ा हुआ है। जहाँ व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र मानवता, विश्व-बन्धुत्व के साथ-साथ मानवेतर सृष्टि अर्थात् परमेष्ठी के साथ एकात्मक सूत्र का बोध होता है। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, मानवता विश्व-और परमेष्ठी आदि विविध वृत्तों में हरेक वृत्त का अपना एक गुणधर्म होता है, एक क्षेत्र होता है और अंगभूत सामर्थ्य भी होता है। एकता के लिए प्रयत्न करते समय इस विशेषता को ध्यान में लेना ही होगा। प्रत्येक वृत्त अपनी विशेषताओं को संजोए रखकर अन्य वृत्तों के लिए पूरक बने, इस दृष्टिकोण से विचार करने पर ही सच्ची एकता का निर्माण किया जा सकता है। 'विविधता में एकता' इन प्रयासों का आधार सूत्र रहेगा। इसके विपरीत विविधता का विचार न करते हुए उसे समाप्त कर एकता के लिए एक सांचे में ढालकर एकरूपता

लाने का प्रयास किया गया तो एकता के बजाय कटुता और संघर्ष का निर्माण होगा। इस्लाम, इसाईयत और कम्युनिज्म का रक्त लक्षित इतिहास इसका साक्षी है।(6)

मानव एकता का विचार भारतीय संस्कृति ने ही किया है। केवल मानव एकता का ही नहीं अपितु संपूर्ण प्राणी तथा चराचर सृष्टि की एकता का भी विचार किया है। किंतु यह विचार पृथगात्मकता की भूमिका से नहीं, विविधता के मूल में विद्यमान एकता के आधार पर किया है। इस संसार में ऊपर से कितनी ही विविधता दिखाई देती हो, उस विविधता के मूल में एकता है और सृष्टि की विविधता उसकी आंतरिक एकता की ही अभिव्यक्ति है। यह भारतीय संस्कृति का मुख्य विचार है। विविधता से विभूषित समस्त सृष्टि में एक ही चैतन्य-तत्त्व समाया है। यही इस विविधता में एकता का प्रमुख सूत्र है। एकता के इस सूत्र को ध्यान में रखकर इस आंतरिक एकता की अनेकरूपी अभिव्यक्ति में रहने वाली परस्पर पूरकता को पहचानते हुए मनुष्यों पर इस परस्परानुकूलता के संस्कार डालना तथा उस एकता को दृढ़तर बनाना ही सच्ची संस्कृति है। (5)

चित्र 2: पाश्चात्य चिंतन को प्रदर्शित करने वाली व्यक्ति और समाज की चक्र गति के आरेख संकेंद्री रचना



चित्र संख्या-2 में प्रदर्शित पाश्चात्यी चिंतन में एकात्म सूत्र के बोध का अभाव है तथा विभिन्न इकाइयों को जोड़ने वाली आंतरिक कड़ी का भी अभाव है। जैसा संकेंद्री वृत्त समूह की अलग-अलग वृत्तों की आकृति से स्पष्ट है कि व्यक्ति के आकृति के चारों ओर परिवार चक्र है तत्पश्चात् समुदाय (जाति चक्र), उससे आगे राष्ट्र का बड़ा चक्र तथा अंत में विश्व मानव का चक्र है। पाश्चात्य चिंतन को प्रदर्शित करने वाली संकेंद्री संरचना से स्पष्ट है कि वहाँ भी व्यक्ति को समाज व्यवस्था में केंद्रीय महत्व का मानकर चिंतन-मनन हुआ लेकिन वहाँ दोष यह कि व्यक्ति, परिवार, समुदाय, राष्ट्र, मानवता एवं विश्व सभी का अलग-अलग अपना संकेंद्री चक्र है तथा सभी एक दूसरे से स्वतंत्र व स्वच्छंद है।

निष्कर्ष

एकात्म मानववाद के दर्शन से पं. दीनदयाल उपाध्याय ने विचारधारा के द्वंद्व से “भारत किधर जाये या जानेवाला है” इस गूढ़तर प्रश्न का जवाब दिया। पश्चिमी विचारधारा से हमारी समस्या का समाधान मिल सकता है, इस सोच का उन्होंने न केवल खंडन किया अपितु त्याज्य योग्य बताया। स्वतंत्रता के बाद देश ने लोकतंत्र को सत्ता के लिए स्वीकार किया और कांग्रेस सत्ताईस वर्ष तक लगातार केंद्र की सत्ता पर आसीन भी रही। इसके बाद सत्ता में बने रहने के लिए आमजन के लिए कल्याणकारी राज्य, समाजवाद, उदारमतवाद का पंथ अपनाया। पं. दीनदयाल जी इसे मात्र नारा मानते हैं तथा कार्यक्रम और विचारधारा की कसौटी पर इसे कोरी बात या मिथ्या प्रलोभन कहते हैं। इसके विकल्प के रूप में उन्होंने एकात्मक मानववाद का दर्शन प्रतिपादित किया। इस निमित्त उन्होंने दो महत्वपूर्ण बातें कहीं। प्रथम—हमें समाजवाद अथवा पूँजीवाद नहीं बल्कि ‘मानव’ का उत्कर्ष और सुख चाहिए और द्वितीय—समाजवाद और पूँजीवाद न तो मानव को समझ सकें हैं और न उन्हें मानव की चिंता है। आज वे दोनों मानव को दाव पर लगाकर लड़ रहे हैं। पश्चिम की राजनीति अभी तक राष्ट्रीयता, प्रजातंत्र समता या समाजवाद के आदर्शों को मानकर चल रही है। इनके द्वारा विश्व शांति की भी बातें की जाती हैं। इस निमित्त प्रथम विश्व-युद्ध के बाद ‘राष्ट्रसंघ’ और द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ‘संयुक्त राष्ट्रसंघ’ की स्थापना की गई, किंतु एक देश की राष्ट्रीयता से दूसरे देशों की राष्ट्रीयता का टकराव विश्व शांति को नष्ट करती रही है। विश्व-शांति को यदि यथास्थिति का अभिप्राय मान लिया जाय तो कई देश स्वतंत्र हो ही नहीं सकते। दो विश्व-युद्धों के मध्य ‘राष्ट्र संघ’ की मृत्यु इसका विलक्षण उदाहरण है। इसके विपरीत विश्व एकता के नाम पर राष्ट्रीयता को नष्ट करने का जाने-अनजाने प्रयत्न हुए हैं। राष्ट्रीयता के भाव को स्वप्न जगत की बात कहा जाता है। यदि इस प्रक्रिया में पश्चिमी राजनीतिक सिद्धांत का विश्लेषण करें तो अनेक सिद्धांत के प्रकटीकरण के बावजूद न तो शाश्वत सिद्धांत बन सके और न ही ये स्थायी सत्तियों से जुड़ पाए। निष्कर्षतः इसे पारिस्थितिक विलगाव पर आधारित सिद्धांत कहना उचित होगा। पं दीनदयाल जी ने “अन्धे नीयमाना यथान्धागः” के पश्चिम पथ का त्याग कर स्वयं का मार्ग अपनाने पर जोर दिया। उनका मत है कि हमारी अपनी प्रकृति है अतः हम अंधानुकरण नहीं कर सकते और न तो प्रजातंत्र में व्यक्ति स्वातंत्र्य का शोषण और पूँजीवादी व्यवस्था में साधनों के केंद्रीयकरण के गंदे स्थिति को मूक दर्शक, होकर देख सकते हैं। इन समस्याओं का निदान पं. दीनदयाल जी ने ‘एकात्म मानववाद’ दर्शन के माध्यम से प्रस्तुत किया। भारतीय राजनीति और अर्थनीति विषय पर पं. दीनदयाल जी द्वारा प्रस्तावित ‘एकात्मक मानववाद’ का दर्शन जहाँ उनकी आत्म चिंतन से युक्त स्फूर्त चेतना है, वहीं राजनीतिक व्यवस्था के लिए निरीक्षित पद भी है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि व्यक्ति जिन अर्थों में भारतीय दर्शन में प्रयुक्त हुआ है वह मात्र अकेला व्यक्ति नहीं है बल्कि व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र, राष्ट्र से विश्व, विश्व से ब्रह्मांड, ब्रह्मांड से परमेष्ठी यह एक निरंतर विकास क्रम है। भारतीय दर्शन में नर से नारायण का दर्शन करने की बात स्वीकार की गई है। भारतीय ज्ञानदर्शन की परंपरा में परमाणु से संपूर्णता तक, अणु से ब्रह्मांड तक भीतर-बाहर जो भी अभिव्यक्ति है उस सब में एकात्मता है। अतः हमारी संपूर्ण व्यवस्था का केंद्र मानव होना चाहिए जो “यत पिंडे तत् ब्रह्मांडे” के न्याय के अनुसार समष्टि का जीवमान प्रतिनिधि है। एकात्मक मानव दर्शन के आधार पर ही वैश्विक जगत को जीवन की सभी व्यवस्थाओं का विकास करना होगा और इसके लिए एकात्म मानववाद एक सार्वभौमिक व्यावहारिक दर्शन के रूप में हमेशा वैश्विक जगत का मार्गदर्शन करता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ

1. दीनदयाल उपाध्याय, एकात्म मानववाद, जागृति प्रकाशन नोएडा- 2004
2. दीनदयाल उपाध्याय, राष्ट्र चिंतन, लोकहित प्रकाशन लखनऊ-2005
3. टेगड़ी, उपाध्याय, गोलवरकर, एकात्म मानवदर्शनय सुरुचि प्रकाशन नई दिल्ली-2014
4. विजय कुमार सिंह एकात्म मानववाद की दार्शनिक पृष्ठभूमि, चिति प्रकाशन पटना -2017
5. भानु प्रताप शुक्ला प्रज्ञाप्रवाह, भारत नीति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली-2016
6. इला त्रिपाठी एवं प्रयाग नारायण त्रिपाठी भारतीय राजनीति को पं दीनदयाल उपाध्याय का योगदान. एन.वी.टी. नई दिल्ली-2017